कुरुक्षेत्र प्रबंधकाव्य का युद्ध प्रदर्शन

*डॉ. संजीव खैमरिया

कुरूक्षेत्र प्रबंधकाव्य राष्ट्रीय विचार धारा के अग्रसर कवि रामधारीसिंह दिनकर द्वारा रचित है। कुरूक्षेत्र शब्द से स्पष्ट होता है कि यह महाभारत के युद्ध के घटनाक्रम पर आधारित है। दरअसल कुरूक्षेत्र मात्र एक युद्ध का ही प्रतीक नही है यह अपने आप में युद्ध की विभीषिका, आवश्यकता एवं औचित्य के संबंध में सैकडों प्रश्न उपस्थित करता है ? इस युद्ध का एक ही गंभीर प्रश्न इन सभी प्रश्नों को समेट लेता है कि हिंसा और अहिंसा में कौन सा तत्व श्रेष्ठ है। युद्ध अनिवार्य है या शांति ? इन्ही प्रश्नों ने दिनकर जी को झंझोड कर रख दिया है कि वर्तमान में क्या अपनाया जाना चाहियें क्योंकि जिस समय कुरूक्षेत्र की रचना हो रही थी, उस समय विश्चयुद्ध छिडा हुआ था वहीं गाँधी जी अपनी अहिंसा की नीति पर दृढ़ थे जिसका कोई लाभ नही दिख रहा था।

ऐसे में एक राष्ट्र भक्त क्रांतिकारी कवि इस केसमाधान के लिये क्या कर सकता था ? इसी कारण दिनकर जी ने अपने समाधान के लिये कुरूक्षेत्र पर दृष्टि डाली और इसी नाम का प्रबंधकाव्य लिख डाला। अपने इसी उद्‌देश्य को वे स्वयं स्पष्ट करते है 1. '' युद्ध निंदित और कूरकर्म है किन्तु इसका दायित्व किस पर होना चाहिये उसपर जो अनीतियों के जाल विछाकर प्रतिकार को नियंत्रण देता है ? या उसपर जो जाल को छिन्न भिन्न कर देने पर आतुर है ? पांडवों को निर्वासित करके एक प्रकार की शांति की रचना तो दुर्योधन ने भी की थी तो क्या युधिष्ठिर महाराज को इस शांति को भंग करना चाहिये था ? ये कुछ मोटी बातें है। जिनपर सोचते–सोचते यह काव्य पूरा हो गया भीष्म और युधिष्ठर का आलबन लेकर मैंने इस पागल कर देने वाले प्रश्न को उसी प्रकार उपस्थिति किया है जैसा कि मैं उसे समझ सका हूँ '' 1 इस प्रकार के समय में कवि दिनकर ने कुरूक्षेत्र का निर्माण युद्ध के दर्शन को व्यक्त करने में ही किया जिससे स्पष्ट हो सके कि युद्ध में हिंसा केवल बुरे उद्‌देश्य के लिये ही नही अपितु अच्छे सामाजिक उद्‌देश्य के लिये भी की जाती है। इस तरह कुरूक्षेत्र में गाँधी जी की अहिंसा और कृष्ण के युद्ध संदर्शन को भी विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। जिसके समग्र स्वरूप को हम कुरूक्षेत्र का युद्ध दर्शन कह सकते है। महाभारत कालीन युधिष्ठिर और भी म पितामह के संबाद को आधार बनाकर युद्ध की समस्या पर कवि ने अपने युगान्तरकारी विचार प्रस्तुत किये हैं। महात्मा गाँधी द्वारा प्रचारित अहिंसा के कारण कवि दिनकर के हृदय में यह संघर्ष उठखडा हुआ था कि अत्याचार एवं अन्याय का विरोध अहिंसा द्वारा करना ठीक है अथवा उसके लिये श्रीकृष्ण द्वारा प्रतिपादित हिंसा मूलक युद्ध की नीति उचित है? इसी प्रश्न को कवि ने कुरूक्षेत्र में प्रस्तुत किया है कि गाँधी या कृष्ण की नीति भिन्न हैं या दोनो ही उचित है या इन दोनो का हिंसा और अहिंसा के विषय में विचार हम समझ भी सके हैं? दिनकर जी का कुरूक्षेत्र में दृढ विश्वासादिखाई पड़ता है कि अनेक समस्याओं की उत्पत्ति और समाधान युद्ध के द्वारा ही संभव है। युद्ध विध्बंस भी करता है और निर्माण भी। अपनी इच्छा से कोई मनुष्य युद्ध करना नही चाहता है किन्तु परिस्थितियां इसे उस युद्ध में शामिल लगा कर ही देती हैं। ऐसी परिस्थति में विवेक से काम लेके उचित नीति ही अपनानी चाहिये क्योंकि अहिंसा के द्वारा स्वभाव से ही अन्यायी का सामना करना उचित नही होता है। सामाजिक विषमता, अन्याय अनीति और कुछ लोगो की स्वार्थभावना के कारण युद्ध अनिवार्य हो जाता है क्योंकि अन्यायी और अत्याचारी त्यागक्षमा और आत्मबल के सामने नही झुकते। वे तो शक्ति और शस्त्र से ही दबाये जा सकते हैं। वास्तविकता यह है कि आत्मा का संग्राम आत्मा से और शरीर का संग्राम शरीर से ही किया जा सकता हैं। अतः अन्यायी के प्रति अहिंसा की भावना कमजोर बनाती है। इस तरह हिंसा और अहिंसा की समय साक्षेप अनुकूलता को कुरूक्षेत्र प्रस्तुत करता है। इस विषय की भावना और बौद्धिकता के द्वंद के रूप में भी देखा जाता है। जहाँ युद्ध की विभीषका को हृदय अनुचित मानता है वहीं मानवी वुद्धि उस युद्ध की आवश्यकता को पहचानती है। इसी कारण दिनकर जी ने इस प्रश्न को पागल कर देने वाला प्रश्न कहा है। समीक्षकों की दृष्टि में यह प्रश्न भावना और बौद्धिकता के द्वंद के रूप में नजर आता है। 2. '' दिनकर का कुरूक्षेत्र प्रधानतः युद्ध और बौद्धिकता की प्रधानता की समस्याओं को लेकर चला है। युद्ध के बाद की विभीषिका का चित्र युद्ध के कारणों उनके शमन का उपाय सहनशीलता एवं प्रतिरोध के औचित्य एवं अनौचित्य आदि पर कुरूक्षेत्र के अंदर बडी प्रभाव पूर्णशैली में विचार व्यक्त किया गया है'' 2

अब हमें कुरूक्षेत्र के युद्ध दर्शन, गाँधी दर्शन में हिंसा और अहिंसा की स्थिति, एवं महाभारत के युद्ध में कृष्ण के संदेश, तीनों को गहराई से समझना होगा क्योंकि कुरूक्षेत्र प्रबंधकाव्य में कवि की दृष्टि भी उचित उद्‌देश्य को लेकर चली है। गाँधी जी का दर्शन भी पूर्णतः उचित है साथ ही योगेश्वर कृष्ण की

* अतिथि व्याख्याता हिन्दी, शा. कन्या महाविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)

वाणी भी सत्य है। अतः इन तीनों की दृष्टियों की गहराई से समीक्षा की जानी चाहिये। 3 ''कुरूक्षेत्र के प्रथम सर्ग में युद्ध का भयावहचित्र प्रस्तुत किया गया है उस भीषणता को देखकर यहां युधिष्ठिर भी उसी तरह व्यथित, व्यग्र एवं बेचैन दिखाये गये है जिस तरह इस युद्ध से पूर्व नर संहार की कल्पना करके महारथी अर्जुन व्यथित एवं व्यग्र थे। इसके दूसरे सर्ग में कवि ने युधिष्ठिर के मनस्ताप का चित्रण किया है जिसमें अहिंसा के प्रतीक युधिष्ठिर पाप–पुण्य, धर्म–अधर्म आदि के भेद में अपने को पूर्णतया असमर्थ पाते है और इसी लिये वे भीष्म पितामह के समीप पहुँचते हैं। तीसरे सर्ग में कवि ने युद्ध दर्शन की समीक्षा की है इसमें युद्ध के प्रश्न को अधिक विस्तार के साथ उठाया है और बताया है कि युद्ध आवश्यक एवं अनिवार्य है किन्तु इसका उत्तरदायित्व किसपर होता है। चौथे सर्ग में भीष्म ने युधिष्ठिर की ग्लानि को दूर करके महाभारत के युद्ध के कारणों पर प्रकाश डाला है कि यदि पांडव युद्ध न करते तो भी युद्ध का होना अनिवार्य था क्योंकि पांडव नही होते भी कोई अन्य असंतुष्ट वर्ग का प्रतिनिधि बन कर युद्ध करने आ जाता। इसके लिये जुआ, लगान चीरहरण, वनवास, राज्य न देना जैसी प्रतिक्रियाये तो मात्र माध्यम ही थीं। पंचम सर्ग में कवि ने युद्ध की विभीषिका का निरूपण करके युद्ध के नरसंहार को मानवता का विनाशक बताया है और युधिष्ठिर के मन स्ताप का निरूयण करता है और अन्याय अत्याचार तथा शोषण के विरूद्व आवाज उठाता हुआ इनकी समाप्ति के लिये युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकार करता है। सातवें सर्ग में कवि ने युधष्ठिर को विश्व पीडा का उन्मूलन करने के लिये कृत संकल्प दिखाया है और भौतिकता, पूंजीवाद आदिका विश्लेषण करके अंत में अन्याय एवं अत्याचार को युद्ध द्वारा ही दूर करके समता की स्थापना पर जोर दिया है। इसके साथ ही कवि ने कर्म और सन्यास का विवेचन करते हुये संन्यास की अपेक्षा निष्काम कर्म को महत्व प्रदान किया है। 3 ''इस तरह दिनकर की दृष्टि में निस्काम कर्मयोग ही जीवन का उद्देश्य है।

वहीं गाँधी जी की अहिंसा कोई अकर्मय सहनशीलता नही हैं यह अपनी पूरी आत्मिक शक्ति के साथ अन्याय का संघर्ष करने के साथ–साथ किसी भी स्थिति में किसी का अहित न करना है। अन्यायी में अन्याय करने की शक्ति और अधिक आ जाती है, जब उसे विरोध में किसी के द्वारा कोई कष्ट पहुँचाने की संभावना हो फिर अन्याय करने में कोई नैतिक भावना आडे नहीं आयेगी। परन्तु यदि सामने वाला झुकने के बजाय साहस के साथ खडा हो कर भी अपने को अहित न पहूँचाने का संकल्प दोहराता रहे ऐसी स्थिति में बिना अपकार के किसी को वेवजह मारने में नैतिक भावना आडे आ सकती है। अतः संभावना है कि दूसरे के अंदर स्थित मानवीय भाव जागे और संघर्ष समाप्त हो जाये और यह परिणाम स्थाई होगा। परंतु हिंसा या शारीरिक प्रतिरोध की स्थिति मं यह संभव नही कि कोई स्वेच्छा से खुशी से हार स्वीकार कर ले। ऐसे में एक पक्ष के नाश पर ही दूसरा पक्ष जीत सकता है और यह परिणाम स्थाई नही होगा क्योंकि या तो प्रतिशोध भावना पुनः विरोधी पक्ष को किसी के नेतृत्व में खडाकर देगी या स्वयं आत्मिक पीड़ा, अदृश्य भय, अपराधबोध या पुनः ऐसी स्थिति न आने देने की चिंता आदि स्थिर चित्त नही होने देगी। हर परिस्थिति में हिंसा स्थाई शांती नही दे सकती है भले ही वह अस्थाई परिणाम प्रस्तुत कर दे। इसी कारण गॉधी जी अहिंसा को प्रथम प्रयोग का अस्त्र कहते है यदि यह असफल हो जाता है तब कायरता, पलायन एवं युद्ध सशस्त्र प्रतिरोध के बीच ही मार्ग चुनना होता है इस स्थिति में गाँधी जी स्पष्ट हैं कि कायरता, के स्थान पर हिंसा अधिक श्रेष्ठ है। स्वयं गाँधी जी के शब्दों में 4 '' मेरा पक्का विश्वास हैं कि जहॉ केवल कायरता और हिंसा के बीच चुनाव करने की बात हो वहॉ मैं हिंसा को ही चुनूँगा। इसके वावजूद वे मानते है कि अहिंसा सदा हिंसा से पूर्व अपनाने का साधन है। इसकी असफलता के पश्चात् हिंसक प्रतिरोध के अतिरिक्त कोई कार्य नही बचता है। अतः कुरूक्षेत्र में कवि की भावना और गाँधी जी की अहिंसा में कोई विशेष अंतर नही है।

श्रीकृष्ण द्वारा गीता उपदेश में अर्जुन को युद्ध में तत्पर रहने का संदेश भी इस प्रश्न का महत्वपूर्ण भाग है। संस्कृति कहती है कि ''अहिंसा परमो धर्म'' अर्थात अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म है अर्थात् इसे ही पहले अपनाया जाना चाहिये और वहीं कृष्ण गीता उपदेश में अर्जुन के युद्ध करने की प्रेरणा दे रहे हैं। फिर कृष्ण अहिंसा का संदेश क्यो नही दे रहे हैं और इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये हमें महाभारत युद्ध के पूर्व की स्थितियों को समझना होगा। हिंसा से हिंसा ही उत्पन्न हो सकती है। यह उसी तरह सत्य है जैसे शेर से शेर और मनुष्य से मनुष्य उत्पन्न होता है। अतः महाभारत के युद्ध के पीछे हिंसा ही कारण रहा हैं। विभाजन होने के पश्चात् जब पांडवों ने अपनी राजधानी में राजसूय यज्ञ किया जब उसके पीछे एकमात्र कृष्ण की ही कृपा थी फिर भी कृष्ण उस यज्ञ में पांव धोने का कार्य कर रहे हैं क्योंकि वे सभी को स्पष्ट कर रहे है कि अपना वैभव दिखाकर दूसरों को कष्ट देना भी हिंसा है और इस भाव से पांडवों के प्रति अन्यों में शत्रुता उत्पन्न होगी। अतः सभी कुछ होते हुये भी त्याग के साथ मदरहित निर्भयकारी जीवन जीया जाना चाहिये। परन्तु रानी द्रोपदी द्वारा ईर्ष्या में पहले से ही जल रहे दुर्योधन को अंधे का पुत्र अंधा कहकर वाचिक हिंसा की गई। नतीजतन पहले से ही दुवृत्ति वाले दुर्योधन द्वारा द्रोपदी का अमानवीय अपमान हुआ। राजा युधिष्ठिर द्वारा जिस राजाअधिकार के नाम पर अपने भाईयों व पत्नी को जुऐं में दाव पर लगाया गया। वह अधिकार हिंसा का जनक होता है अधिकार से अंततः हिंसा और त्याग जो अहिंसा उत्पन्न होती है। इन परिस्थितियों ने महाभारत युद्ध को जन्म दिया। अभी तक दोनो ही पक्ष हिंसा के बदले हिंसा ही कर रहे थे और अर्जुन जो पहले से ही युद्ध के प्रति संकल्पित था और उस युद्ध में उसके सगेसंबंधी भी उससे युद्ध करेंगें, यह भी वह भलीभांति जानता था। इस तरह मन से वह पहले से ही अपने विरोधियों के प्रति हिंसा कर रहा था। ऐसे में एक क्षण के मोह में हिंसा को अनुचित बताने लगा था जबकि

वह पूर्व के युद्धों में कई बार हिंसा कर चुका था। अतः अर्जुन अहिंसा का मार्ग अपनाने वाला व्यक्ति नही था। ऐसी स्थिति में अर्जुन या पांडव युद्ध के प्रति निश्चित थे और अचानक युद्ध को अनुचित बनाते लगे थे। ऐसे में विरोधी पक्ष जो पूरी तरह युद्ध की मानसिकता में आया था और पांडवों की इस अहिंसा की बातों को कायरता समझकर वह किसी को भी जीवित नही समझता फिर उन हत्याओं का जिम्मेदार कौन होता ? अतः युद्ध को पूरी तरह अस्तित्व में लाकर पांडव युद्ध से हटते तो वह कायरता ही होता फिर कृष्ण, अर्जुन को युद्ध की सम्मति दे रहे हैं तो वह अहिंसा की रक्षा के लिये ऐसा कर रहे हैं।

अब यदि अहिंसा को प्रयमतः प्रयोग में लाने की बात है तो कृष्ण जो कि स्वयं युद्ध के पूर्व शांति के लिये दूत बनकर गये और कृष्ण की शांति की पहल को ठुकराकर दुर्योधन ने उन्हे बंदी 5 बनाने का प्रयास किया। उसे इस अपराध के लिये क्षमा करके कृष्ण ने अहिंसा का साधन अपनाया और परिणाम के आधार पर जिसमें अहिंसा महाभारत युद्ध को नही रोक सकी, कृष्ण स्वयं युद्ध का नाद हस्तिनापुर में सुना आये, तो युद्ध तो अनिवार्य है। क्योंकि अहिंसा का प्रथम प्रयोग किया जा चुका है और वह सफल नही हो सकी तो कायरता के स्थान पर हिंसा ही विकल्प बचता है। रही बात अपने संबंधियों पर अस्त्र चलाने की अर्जुन या पांडव यह कार्य इससे पूर्व भी कर चुके हैं और न्याय के लिये युद्ध का संकल्प लेकर देयमन से उन संबंधियों को मार भी चुके है ऐसे में कृष्ण का संदेश पूरा का पूरा निष्काम कर्मयोग से युक्त है। क्योकि अब युद्ध अपने स्वार्थ के लिये नहीं अपने पक्ष के लोगों की रक्षा करने के लिये, न्याय पक्ष की रक्षा के लिये, हो रहा हैं और जब कोई किसी की रक्षा करता है तब केवल उसके प्राण बचाना चाहता हैं न कि यह सोचता है कि यह बच जाये और यह मर जाये अतः कृष्ण का संदेश यही है कि युद्ध अनिवार्य हो चुका है। अहिंसा असफल हो चुकी है। ऐसे में युद्ध से पलायन किया तो लाखों निर्दोष मारे जायंगे इसलिये हिंसा द्वारा उनकी रक्षा करने के अतिरिक्त कोई विकल्प ही नहीं है।

यही शिक्षा महात्मा गाँधी की है। रत्तीभर अंतर नही है। बहुधा गाँधी बाद को कृष्ण की गीता के विपरीत माना जाता है परन्तु ऐसा नही है। यदि ऐसा होता है तो गाँधी जी गीता को अपनी माता नही कहते। गाँधी जी की अहिंसा का विचार मूलतः गीता की देन है जिसमें अहिंसा के असफल होने की स्थिति में ही हिंसा को अपनाया जाना श्रेष्ठ कर्म है। जिसमें कायरता का त्याग अनिवार्य है। इन तीनों ही दर्शनों का मूल्यांकन करने पर स्पष्ट होता है कि महाभारत के युद्ध में कृष्ण का अर्जुन को दिया गया निष्काम कर्मभाव से युद्ध करने का संदेश गाँधी जी की अहिंसा का सिद्धांत और दिनकर जी के महाकाव्य कुरूक्षेत्र में उनका युद्ध दर्शन कहीं भी भिन्न नही है यद्यपि यह भिन्न–भिन्न प्रतीत होता हैं। कुरूक्षेत्र प्रबंध काव्य में कवि दिनकर समाज के इस विरोधाभास को मिटाने के लिये प्रयासरत हैं कि स्वतंत्रता के संग्राम में जहॉ सर्वत्र युद्ध के घोष बज रहे हैं ऐसे में कौन सी रणनीति अपनायें या अंग्रेजों के प्रति हिंसक प्रतिरोध अपनायें या गाँधीवादी सिद्धांतों के नाम पर प्रहार सहन करें। इस आशा में कि विरोधी की आत्मा जाग उठेगी। जिस परिस्थिति में कुरूक्षेत्र लिखा गया है। उस परिस्थिति में अहिंसा पहले ही असफल हो चुकी थी। गॉधी जी का अहिंसा सिद्धांत अंग्रेजो के हृदय परिवर्तन में सफल नही हो सका था। क्योंकि इंग्लैण्ड स्वतंत्रता संग्राम के वर्षो में विश्व राजनीति में निरंतर युद्ध में संलग्न रहा था फिर उसे अहिंसा के बारे लगा में सोचने का समय ही कहाँ था। ऐसे इंग्लैण्ड का केन्द्रीय शासन निरंतर युद्ध और दमन को ही अपनाये रहा इसके लिये हम अहिंसा को व्यर्थ नही मान सकते। वह अचूक है। किन्तु इस उद्देश्य में अपनाये जाने के बाद असफल हो चुका था। अब सशस्त्र संघर्ष के अतिरिक्त कोई विकल्प ही नही था। यह मानना स्वयं गाँधी जी का था। इन वर्षो में उन्होंने दूसरों को हिंसा के मार्ग को अपनाने से नही रोका था और स्वयं को ही अहिंसा करने का निर्देश दिया था। अतः कुरूक्षेत्र का संदेश कहीं भी गॉधी विरोधी नही है। रही कृष्ण के संदेश की बात वह भी अहिंसा के असफल होने पर हिंसा को ही एकमात्र कर्म मानते है। फिर गॉधी जी का अहिंसा सिद्वांत भी यही कहता है तीनों का गहराई से अध्ययन करने पर तीनों में कहीं विरोधावास नही प्रतीत होता है। अतः कुरूक्षेत्र प्रबंधकाव्य का युद्ध दर्शन एक व्यवहारिक एवं वास्तविक युद्ध दर्शन है। युद्ध हर परिस्थिति में बुरा है और स्थाई परिणाम उत्पन्न नही कर सकता है और न ही इसे अपनाने के पश्चात् कोई शांति व आनन्द का अनुभव कर सकता है परन्तु जहाँ अन्याय पक्ष के दुराग्रह से अहिंसा का मार्ग पूरी तरह असफल हो जाये तब उसके साथ सशस्त्र संघर्ष करना ही अनिवार्य है और संग्राम के दौरान युद्ध के पीछे हटने का कोई भी तर्क हो वह कायरता ही है। अतः अहिंसा और हिंसा के औचित्य पर स्पष्ट दृष्टि रखते हुये युद्ध करना ही युद्ध का सनातन दर्शन है, जो कुरूक्षेत्र में स्पष्ट हुआ है। जहाँ अहिंसा को आजमाने के पश्चात् ही हिंसा का संदेश है। यही कवि दिनकर की राष्ट्रचेतना है। यही गाँधी जी का अहिंसा सिद्धांत है और यही कृष्ण का निष्काम कर्मयोग है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. निवेदन कुरूक्षेत्र (दिनकर) 2. हिन्दी साहित्य (1926–47) प . 463 डॉ. भोलानाथ 3. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना। 4. यंग इंडिया 11. 08.1920 (गाँधी दर्शन)